हिंसक राजनीति में ध्वस्त होता लोकतंत्र

सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव का समूचे देश में कमोबेश शांतिपूर्ण रहना जितना प्रशंसनीय है, उतना ही निंदनीय है पश्चिम बंगाल में उसका हिंसक, अराजक एवं अलोकतांत्रिक होना। चुनावों से लोकतांत्रिक प्रक्रिया की शुरूआत मानी जाती है, पर पश्चिम बंगाल में चुनाव लोकतंत्र का मखौल बन चुके हैं। वहां चुनावों में वे तरीके अपनाएं गये हैं जो लोकतंत्र के मूलभूत आदर्शों के प्रतिकूल हैं। सातवें चरण के प्रचार में कोलकाता में हुई झड़प और हिंसा ने लोकतांत्रिक बुनियाद को ही हिला दिया है। इस घटना और दूसरे चरणों की घटनाओं ने एक बार फिर अस्सी के दशक की याद दिला दी है, जब चुनाव के समय खासकर बिहार से हत्या, मारपीट, बूथ लूटने, मतदान केन्द्रों पर कब्जा करने और हंगामे की खबरें आती थीं। इस बार पश्चिम बंगाल से लोकसभा चुनाव के हर चरण में ऐसी ही खबरें आई हैं। कुछ समय पहले पंचायत चुनाव के दौरान भी भारी हिंसा हुई थी। इन स्थितियों ने पश्चिम बंगाल की लोकतांत्रिक स्थितियों पर अनेक सवाल खड़े कर दिये हैं।

बंगाल अपनी समृद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं के लिए जाना जाता रहा है। पिछले दो सौ वर्षों में उसने कई बार देश को दिशा दिखाई है। राजनीतिक हिंसा ऐसे सुसंस्कृत राज्य की पहचान बन जाना क्षोभ और आश्चर्य का विषय है। शांति एवं संतता की धरती पर हिंसा को वोट हासिल करने का माध्यम बनाना त्रासद है। इन विडम्बनापूर्ण स्थितियों से गुरजते हुए, विश्व का अव्वल दर्जे का कहलाने वाला भारतीय लोकतंत्र शर्मसार हुआ है, उसकी गरिमा एवं गौरव को ध्वस्त करने की कुचेष्टा अक्षम्य है। पश्चिम बंगाल में हिंसा, अराजकता एवं अपराध की राजनीति का खेल खेला गया है, जहां से जाने वाला कोई भी रास्ता अब निष्कंटक नहीं दिखाई देता। लोकतंत्र को इस चैराहे पर खड़े करने का दोष किसका है? यह विमर्शनीय है। लेकिन यह तय है कि वहां के राजनैतिक दलों व नेताओं ने अपने निजी व दलों के स्वार्थों की पूर्ति का माध्यम बनाकर इसे बहुत कमजोर कर दिया है। आज ये दल, ये राजनेताओं ने न केवल अपनी पात्रता पर प्रश्नचिह्न टंकवा लिये हंै बल्कि अपनी राजनीति जिजीविषा को भी धुंधला दिया है, कलंकित कर दिया हैं। इस पर विमर्श और राजनीति होती रहेगी, लेकिन गंभीर चिंता की बात यह है कि एक पार्टी अध्यक्ष के रोड शो को उपद्रव व पथराव के कारण बीच में रोकना पड़ा। शायद इस चुनाव में यह पहला रोड शो है, जिसे हिंसा की वजह से रोकना पड़ा है। केंद्र में सत्तारूढ़ पार्टी के अध्यक्ष अमित शाह का यह कहना तो बेहद चिंताजनक है कि केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के जवान नहीं होते, तो वह जिंदा नहीं लौटते। संभव है कि इस आरोप के पीछे भाजपा की राजनीति हो, लेकिन ममता बनर्जी द्वारा अमित शाह को सीधे गुंडा कह देने की राजनीति का बचाव कैसे किया जाए?

अपनी भद्रता, बलिदान एवं बौद्धिकता के लिए मशहूर बंगाल में कुछ नेताओं-कार्यकर्ताओं ने इस चुनाव में हिंसक एवं अराजक व्यवहार प्रदर्शित करके अपने गौरव को नेस्तनाबूंद कर दिया है। वैसे भी राजनीतिक हिंसा की परंपरा बंगाल में पिछले कई दशकों से उग्र रही है, भावनाओं या आवेश की राजनीति वहां होती रही है। पश्चिम बंगाल में करीब 34 वर्ष के वाम शासन के बाद उम्मीद की गई थी कि ममता बनर्जी राजनीतिक संस्कृति को बदल देंगी, लेकिन शायद ऐसा नहीं हो पाया है। यह हैरानी की बात है कि वाम दलों के कुशासन और उनकी अराजकता का सामना करने वाली ममता बनर्जी उन्हीं के रास्ते पर चल रही हैं। दरअसल इसी कारण राज्य में वैसी ही चुनावी हिंसा देखने को मिल रही है जैसी वाम दलों के शासन के समय दिखती थी। यह एक विडंबना ही है कि लोकतांत्रिक मूल्यों और मान्यताओं को ठेंगा दिखा रहीं ममता बनर्जी खुद को प्रधानमंत्री पद का दावेदार भी मान रही हैं।

यह राजनीतिक विशेषज्ञों के लिए विचार का विषय है कि पश्चिम बंगाल में क्या भावनाएं, आवेश और हिंसा, तीनों ही एक सत्ताधारी से दूसरे सत्ताधारी तक पहुंच गए हैं? ऐसे में, विडंबना देखिए, देश के एक आदर्श शालीन समाज सुधारक ईश्वर चंद्र विद्यासागर को भी वोट की राजनीति में घसीट लिया गया है। कोलकाता में जिस तरह बड़े पैमाने पर हिंसा हुई, जादवपुर विश्वविद्यालय के 'ईश्वर चन्द्र विद्यासागर कालेज' के छात्रों द्वारा किया गया हिंसक प्रदर्शन, जिसमें कई छात्र जख्मी भी हुए, इस घटना में सबसे क्रूर कार्य यह हुआ कि बंगाल में 'ऋषि तुल्य' स्थान रखने वाले ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की कालेज प्रांगण में स्थापित प्रतिमा को विद्रूप कर दिया गया। इन घटनाओं को लेकर पश्चिम बंगाल सरकार की देश भर में बदनामी ही हो रही है। आखिर क्या कारण है कि एक अकेले राज्य पश्चिम बंगाल में उतनी चुनावी हिंसा हुई जितनी शेष देश में भी नहीं हुई? पश्चिम बंगाल में केवल विरोधी दलों और खासकर भाजपा की सभाओं को ही निशाना नहीं बनाया जा रहा है, बल्कि उसके कार्यकर्ताओं और नेताओं पर भी हमले हो रहे हैं। भाजपा नेताओं की रैलियों में छल-बल से खलल डालने के साथ ही उन लोगों को डराने-धमकाने का काम भी बड़े पैमाने हो रहा है जिन्हें भाजपा का वोटर माना जा रहा है। इस बात को मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि यह काम बिना किसी रोक-टोक इसीलिए हो रहा है, क्योंकि तृणमूल कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को शासन-प्रशासन की शह मिली हुई है। चुनाव में हिंसा के इस्तेमाल को कैसे जायज ठहराया जाए? कैसे सत्ता का राजनीतिक उपयोग औचित्यपूर्ण है? क्या आप अपने अच्छे व्यवहार और विचार से वोट जुटाने के प्रयास में नाकाम हो रहे हैं, तो हिंसा के हथियार को अपनाकर अपनी जीत सुनिश्चित करना चाहते हैं। लेकिन इसे कैसे लोकतांत्रिक माना जा सकता है? अन्य राज्यों की तुलना में अगर बंगाल कुछ अलग ही ढंग में आक्रामक एवं हिंसक दिख रहा है, तो उसे कानून-व्यवस्था के तहत नियंत्रित करना किसकी जिम्मेदारी है? जाहिर है यह राज्य सरकार और चुनाव आयोग की जिम्मेदारी है। राज्य में मूल्यहीनता का वातावरण बना, अराजक, आपराधिक एवं हिंसक तत्व यदि सक्रिय हो गए हैं, तो उन्हें पकड़ना और हिंसा रोकना राज्य सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी होनी चाहिए। इसमें नाकामी तो चुनाव पूर्व ही राज्य सरकार की हार की द्योतक है, ऐसी नकारा एवं अकुशल नेतृत्व को कैसे शासन की जिम्मेदारी दी जा सकती है? जब एक अकेले व्यक्ति का जीवन भी मूल्यों के बिना नहीं बन सकता, तब एक राज्य मूल्यहीनता में कैसे सुशासक बन सकता है? अनुशासन के बिना एक परिवार एक दिन भी व्यवस्थित और संगठित नहीं रह सकता तब संगठित प्रान्त की कल्पना अनुशासन के बिना कैसे की जा सकती है?

इन चुनावों में अनियमितता के लिए चुनाव आयोग की कानून-सम्मत तत्काल अनुशासनात्मक कार्यवाही ने सभी राजनैतिक दलों के कान खड़े कर दिये। सबको सकते में ला दिया। प्रांतीय सरकार की नींद उड़ा दी। अधिकारी वर्ग व पूरा चुनाव-तंत्र कार्यवाही के डर (फीयर ऑफ एक्शन) से सावचेत हो गया। जिस अव्यवस्था, छीना-झपटी व हिंसा की बड़े पैमाने पर घटनाओं को अंजाम दिया गया, तो दूसरी ओर उनके खिलाफ जो सख्त कार्रवाही हुई है उसका संदेश है सरकार और राजनीतिक कर्णधारों को कि शासन संचालन में एक रात में (ओवर नाईट) ही बहुत कुछ किया जा सकता है। अन्यथा "जैसा चलता है– चलने दो" की नेताओं की मानसिकता और कमजोर नीति ने जनता की तकलीफें बढ़ाई हैं। ऐसे सोच वाले व्यक्तियांे को अपना राज्य नहीं दिखता। उन्हें राष्ट्र कैसे दिखेगा। भारत मंे जितने भी राजनैतिक दल हैं, सभी ऊंचे मूल्यों को स्थापित करने की, आदर्श की बातों के साथ आते हैं पर सत्ता प्राप्ति की होड़ में सभी एक ही संस्कृति को अपना लेते हैं। मूल्यों की जगह कीमत की और मुद्दों की जगह मतों की राजनीति करने लगते हैं। इसमें ममता बनर्जी ने तो सारी हदें पार कर दी है। शायद उनकी हिंसक मानसिकता एवं अराजक सोच परिणाम से पूर्व ही हार की संभावनाओं की निष्पत्ति है। यही कारण है कि उन्होंने एवं उनके दल के कार्यकर्ताओं ने चुनावों की प्रक्रिया को अपने स्तर पर कीचड़ भरा कर दिया है। बिना विचारों के दर्शन और शब्दों का जाल बुने यही कहना है कि लोकतंत्र के इस सुन्दर नाजुक वृक्ष को नैतिकता के पानी और अनुशासन की ऑक्सीजन चाहिए। जो इस मारकाट मचाती राजनीति में अपना जीवन नहीं तलाश पा रही है। जरूरत है राजनीतिक हिंसा या चुनावी हिंसा को रोकने के लिए स्पष्ट नियम-कायदे बनें। जिस पार्टी की सोच एवं दिशा हिंसा या तोड़फोड़ को अंजाम दे, उस पार्टी पर दंडात्मक कार्रवाई हो। फिर भी अगर कोई पार्टी न सुधरे, तो उसकी मान्यता रद्द हो। देश को सभ्य बनाए रखना है, तो असभ्यों को पालने वाली पार्टियों की कतई आवश्यकता नहीं है।

(ललित गर्ग)
ई-253, सरस्वती कंुज अपार्टमेंट
25 आई. पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-92
फोनः 22727486, 9811051133